International Journal of Research in Hindi
www.hindijournal.in
ISSN: 2582-3493; Impact Factor: RJIF 5.46
Received: 20-10-2020; Accepted: 05-11-2020; Published: 23-11-2020
Volume 2; Issue 4; 2020; Page No. 36-40

मध्यकालीन परिवेश और तुलसी की समन्वय भावना

ऋषिकेश सिंह
शोधार्थी, जामिया मिल्लिया इस्लामिया, दिल्ली, भारत

प्रस्तावना

प्रस्तुत शोध-प्रपत्र के विषय का केंद्रीय शब्द 'समन्वय' है। अतः विषय के स्पष्टीकरण से पूर्व 'समन्वय' शब्द के निहितार्थ को समझ लेना आवश्यक है। शाब्दिक अर्थ के रूप में जहां हरदेव बाहरी द्वारा संपादित 'हिंदी शब्दकोश' में इस शब्द का अर्थ "नियमित क्रम, संयोग, मेल, पटरी संबद्ध फल व कार्य कारण संबंध का निर्वाह" [1] दिया गया है। वहीं रामचंद्र वर्मा द्वारा संपादित 'संक्षिप्त हिंदी शब्दसागर' में इसका अर्थ "संयोग, मिलाप, विरोध का ना होना, कार्यकरण का प्रवाह या निर्वाह" [2] है। दरअसल दोनों प्रसिद्ध शब्दकोशों में दिए गए शब्दार्थ प्रस्तुत विषय से संबंधित शब्द 'समन्वय' के अर्थ उद्घाटन हेतु अपूर्ण हैं, क्योंकि इनसे जो भाव ध्वनित हो रहा है उस का तात्पर्य यह है कि दो या अधिक सत्ता, अस्तित्व, व्यक्तित्व, मत आदि का मिलकर एक हो जाना। जिसमें कि अन्य सभी कि अस्मिता तिरोहित हो जाए। वस्तुतः यह 'समन्वय' नहीं 'सम्मिलन' या 'सम्मिश्रण' है। जबकि समन्वय शब्द का चरित्र 'धर्मनिरपेक्षता' की उस व्याख्या के समान है जहां सभी धर्मों के साथ रहते हुए सभी का सम्मान करना एवं सभी को महत्व देना होता है, असहिष्णुता के स्थान पर सहिष्णुता को बढ़ावा देना होता है। इसी कारण समन्वय को पूर्णतः परिभाषित करने हेतु तात्कालीन परिवेश की समझ होना भी अत्यंत आवश्यक होता है। अतः तुलसीदास की समन्वय भावना पर विचार करते समय हमें उनके तत्कालीन समाज पर व्यापक दृष्टि डालनी होगी। तभी हम उनकी समन्वय भावना को समझ पाएंगे और इस विषय के साथ उचित न्याय कर पाएंगे। तुलसीदास जिस काल में रचनाकर्म कर रहे थे वह काल मुगल शासकों का केंद्रीय सत्ता का स्वर्णिम काल था। जिसमें महान शासक अकबर ने जजिया की समाप्ति, व दीनइलाही के माध्यम से-ए- धार्मिक स्तर पर सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास किया, परंतु सामाजिक स्तर पर यह दो अलगअलग संस्कृति-याँ अपने अलग-अलग नियम, कायदे व परंपराओं एवं अविश्वास के कारण अमिश्रित ही रहीं। वहीं दूसरी ओर 16वीं शताब्दी के अंतिम चरण में भक्ति आंदोलन पहुंचने पर भी कई जगह स्थानीय स्तर पर सामंती विचारधारा का बोलबाला था। जिसमें पुरोहितवाद, वर्णाश्रम मिश्रित भेदभाव, रूढ़ियां आदि व्यापक स्तर पर विद्यमान थीं। जिसके फलस्वरूप उदात्त मानवीय मूल्यों व नैतिक मूल्यों का ह्रास बड़ी तेजी से हो रहा था व समाज में असमानता, दरिद्रता, अमंगल आदि का वातावरण बनता चला जा रहा था। इन उदात्त मूल्यों के ह्रास को उस समय लोकसंवेदी कवि तुलसीदास ने केवल पहचाना ही नहीं बल्कि ह्रास की जड़ सामंती व्यवस्था पर कड़े प्रहार करके उसके वास्तविक स्वरूप को सामने लाए। इस व्यवस्था के पोषक सामंतों व राजाओं को जो प्रजा धर्म

को भूल तरह-तरह के अन्याय एवं शोषण कर रहे थे को तुलसीदास ने चोर तथा नरकयोग्य की संज्ञा दी है-

"वेद धर्म दूरि गए, भूमि चोर भूप भए।" (कवितावली)

"साम न दाम न भेद कलि केवल दंड कराल।" (दोहावली)

"जासू राज प्रिय प्रजा दुखारी, सो नृप अवसि नरक अधिकारी।" (मानस)

तुलसीदास ने इस व्यवस्था की संवेदनशील तीव्रता को प्रकट करने हेतु केवल शोषक सामंतों एवं राजाओं का ही वर्णन नहीं किया है बल्कि तत्कालीन जनसाधारण की दयनीय व आर्थिक स्थिति को अभिव्यक्त करते हुए उन्होंने लिखा है-

"खेती न किसान को, भिखारी को न भीख बलि, बनिक को बनिज, न चाकर को चाकरी।

जीविकाविहीन लोग, सिद्यमान सोच बस, कहें एक एकन सों, कहाँ जाइ का करी।।" (कवितावली)

सामंती व्यवस्था के इस दुष्प्रभाव के कारण सामाजिक परिवेश में बढ रहे अंधविश्वासों रूढ़ियों एवं वर्णाश्रम व्यवस्था के विकृत स्वरूप आदि को भी गोस्वामी जी ने अपने तीक्ष्ण व्यंग्यों के माध्यम से व्यक्त किया है-

"लही आँख कब आँधरे, बाँझ पूत कब ल्याई।

कब कोढ़ी काया लही, जग बहराइच जाय।।" (दोहावली)

"आश्रम धरम बरन बिरहित जग लोक बेद मरजाद गई है।"

सामाजिक परिवेश के साथ-साथ धार्मिक क्षेत्र में भी न केवल अनेक धर्म, सम्प्रदाय, और मत-मतांतर प्रचलित हो गए थे बल्कि इनमें आगे आने वाले अज्ञानी साधु-सन्यासियों ने समाज को गुमराह भी कर रखा था अर्थात धार्मिक अराजकता के साथ-साथ स्वार्थपरक अज्ञानता का भी दौर था। डॉ. नगेन्द्र के शब्दों में कहें तो "निर्गुण ब्रह्म की बात करने वाले ये तथाकथित अज्ञानी साधु सन्यासी न तो ब्रह्मविद्या से परिचित थे और ना किसी यथार्थ तत्वज्ञान का ही इन्हें बोध था। वैराग्य और मायावाद का ढोंग करने वाले इन साधुओं ने समाज में ऐसी लहर अवश्य पैदा कर दी थी, जो संसार को क्षणभंगुर बताकर विरक्त बनाने का प्रोत्साहन देने वाली थी।"3 साथ ही साहित्य में प्रकृतजनों के बढ़ते हुए गुणगान को भी देख तुलसीदास ने इन दोनों पर अपना गहरा क्षोभ व्यक्त किया-

"श्रुति सम्मत हरि भगति पथ, संजुति बिरति विवेक।

तेहिं न चलहिं नर मोह बस, कल्पहिं पंथ अनेक।।" (मानस)

"कीन्हें प्राकृतजन गुनगाना, सिर धुन गिरा लागि पछिताना।"

और यही कारण है कि विश्वनाथ त्रिपाठी "इनकी लोकप्रियता का कारण उनकी कविता में इनके द्वारा देखे हुए जीवन के गहरे व व्यापक चित्रण को मानते हैं।" [4]

इस प्रकार उपरोक्त के माध्यम से मध्यकालीन परिवेश में केंद्रीय सत्ता के बावजूद उपस्थित विषंगतियों, उसके कारण, उसकी तीव्रता और तुलसीदास द्वारा उनका तटस्थ चित्रण देखा जा सकता है और यह भी अंदाजा लगाया जा सकता है कि तत्कालीन समाज उस सामंती वातावरण से निकलने के लिए किस तरह बेताब रहा होगा। इस छटपटाहट रामविलास शर्मा की इन उक्तियों से पता चलता है कि "जातीय आंदोलन में भाग लेने वाले व्यापारी, जुलाहे, कारीगर, किसान आदि थे। इनकी एकता की चाह सामंती अलगाव को दूर करके मिलने की चाह भक्ति आंदोलन में प्रकट हुई।" [5] इस चाह से उस समाज में समन्वय, समानता व मंगल की आवश्यकता का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है। 'आचार्य रामचन्द्र शुक्ल' के शब्दों में कहें तो "भक्ति का यह विकृत रूप जिस समय उत्तर भारत में अपना स्थान जमा रहा था, उसी समय भक्तवर गोस्वामी जी का अवतार हुआ जिन्होंने वर्णधर्म, आश्रमधर्म,कुलाचार, वेदविहित कर्म, शास्त्रप्रतिपादित ज्ञान इत्यादि सबके साथ भक्ति का पुनः सामंजस्य स्थापित करके आर्यधर्म को छिन्नभिन्न- होने से बचाया ऐसे सर्वांगदर्शी लोक

व्यवस्थापक महात्मा के लिए मर्यादापुरुषोत्तम भगवान रामचंद्र के चरित्र से बढ़कर अवलंब और क्या मिल सकता था।" [6]

परंतु यहां यह ध्यान देने योग्य है कि यह चाह समाज के उस वर्ग की थी जो उपेक्षित था, जो निम्न था और यह तभी संभव था जब लोगों में एकता, बंधुत्व, समरसता की भावना का संचार हो। तभी तत्कालीन समाज को सामंती व्यवस्था व विचारधारा से मुक्त किया जा सकता था। इस चाह को महान लोकवादी कवि तुलसीदास ने पहचाना। जिसके कारण ही समन्वय और लोकमंगल की भावना से उनका काव्य ओतप्रोत है, इसका वर्णन उनके काव्य में स्थान-स्थान पर है। उदयभानु सिंह के शब्दों में कहें तो "लोकदर्शी तुलसी ने जनता के हृदय की धड़कन को पहचाना और जनभाषा के माध्यम से रामचरित मानस के रूप में समन्वय का वह आदर्श प्रस्तुत किया जो अपने कवित्वमय भक्तिदर्शन, भक्तिदर्शनमय कवित्त और आमूढपंडितव्यापिनी लोकप्रियता के कारण अद्वितीय है।" [7]

यही कारण है कि उनके लोकनायक राम शंबूक का वध नहीं करते बल्कि गीध, वानर, कोल, किरात, सबरी, निषाद जैसे उपेक्षित लोगों को गले लगाकर समन्वय, एकता, बंधुता का उच्च आदर्श स्थापित करते हैं। गोस्वामी जी के काव्य में ऐसे उदाहरण अनेक हैं इसी कारण कहा जाता है कि उनके काव्य में समन्वय व मंगल स्थान-स्थान पर विद्यमान है जिसका कुछ पक्षों में आंशिक वर्णन निम्न है-

इस रूप में सर्वप्रथम साधना के क्षेत्र को देखा जा सकता है। भक्तिकाल में यह क्षेत्र निर्गुण और सगुण दो रूपों में विभक्त था। जहाँ सगुण के अंतर्गत भक्ति और कर्म जैसे क्षेत्र आते थे, वहीं निर्गुण के अंतर्गत ज्ञान और दर्शन, परंतु सर्वाधिक बड़ी समस्या इनके आपसी विवाद की थी निर्गुणधारा के साधक निर्गुण ब्रह्म को श्रेष्ठ बताते थे और सगुण धारा के भक्त अपने अवतारवादी ईश्वर को। सूरदास ने भी उस समय 'निर्गुण कौन देश को वासी ' कहकर तथा तुलसीदास ने भी 'हम लखि हमहिं हमार लखि, हम हमार के बीच/ तुलसी अलखै का लखै राम नाम जप नीच //' कहकर इस विवाद में भाग लिया था। परंतु समयांतर अपने आकाशधर्मी चरित्र के कारण तुलसीदास ने यह समझ लिया कि इस संक्रमणकाल में इन दोनों साधना पद्धतियों को अलग-अलग देखने के बजाए दोनों में समन्वय की महती आवश्यकता है कालांतर उन्होंने इन दोनों में समन्वय का प्रयास करते हुए लिखा-

"अगुन सगुन दुई ब्रह्म सरूपा। अकथ अगाध अनादि अनूपा।।" (मानस)

सगुण और निर्गुण की ही भांति उन्होंने तत्कालीन वैष्णव व शाक्तों में भी श्रेष्ठता को लेकर चल रहे विवाद का शमन करते हुए दोनों संप्रदायों में समन्वय का प्रयास कुछ इस तरह किया है-

"शिव द्रोही मम दास कहावा। सो नर मोहिं सपनेहुं नहिं भावा।।" (मानस)

उपरोक्त की ही भांति सृष्टि प्रक्रिया के विषय में तुलसी ने वैष्णव-वेदांत की माया और सांख्ययोग की प्रकृति का समन्वय भी किया है-

"प्रकृति, महतत्व, शब्दादि, गुण देवता, व्योम मरुदग्नि, अमलाम्बु उर्वी।" (विनयपत्रिका)

"माया जीव सुभाव गुन काल करम महदादि।

इक अंक ते बढ़त सब, इक अंक बिनु बादि।।" (दोहावली)

अद्वैतवाद के ईश्वर एवं जीव के एकत्व का विरोध करते हुए, विशिष्टाद्वैत के अनुरूप तुलसी ने ईश्वर और जीव के बीच अंश-अंशी के संबंध को स्थापित करते हुए दास्य भक्ति के अंतर्गत दोनों में सम्बन्ध स्थापित करने का महत्वपूर्ण प्रयास करते हुए लिखा है-

"ईश्वर अंश जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी।।" (मानस)

प्राचीन काल से ही भाग्य और पुरुषार्थ दोनों की श्रेष्ठता को लेकर भिन्न भिन्न मत प्रचलित थे। तुलसीदास ने दोनों को अलग-अलग न देखकर उनके समन्वय को ही श्रेष्ठ माना है, उनके अनुसार कर्म का फल दोनों का साम्य है-

"शुभ अरु अशुभ करम अनुहारी। ईसु देइ फल हृदय बिचारी।।" (मानस)

तुलसीदास वर्णाश्रम के निष्ठावान समर्थक हैं, परंतु वर्णाश्रम धर्म का अस्तित्व मानवतावाद के समन्वय से ही है। इसे तुलसीदास के इस पंक्तियों के माध्यम से समझा जा सकता है-

"राजघाट सब विधि सुंदर वर। मज्जहिं तहाँ बरन चारिउ नर।।"

"परहित सरिस धरम नहिं भाई। परु पीड़ा नहिं सम अधमाई।।" (मानस)

अद्वैत और विशिष्टाद्वैत के संबंध को स्पष्ट करने के साथ तुलसीदास ने वैराग्य और गार्हस्थ के संबंध को भी स्पष्ट किया है। उनका मानना है कि इन दोनों को अलग-अलग देखने के बजाए सर्वाधिक उत्तम मार्ग इन दोनों का समन्वय है-

"घर कीन्हें घर जात हैं, पर छाँड़े घरजादू।
तुलसी घर-बन बीचहौं, रामप्रेम परछाइ।।" (दोहावली)

तुलसीदास ने मानस में देव, दानव, नर, वानर, पक्षी आदि में जैसा साम्य स्थापित किया है, अन्यत्र दुर्लभ है। उनके लोकनायक सभी को सम्मान व वैसी ही गति प्रदान करते हैं जिसके वे अधिकारी हैं। इस रुप में तुलसीदास ने जो पंचजातियों का समन्वय किया है अपने आप में बेजोड़ है उन्होंने लिखा है-

"प्रभु तरुतर कपि डार पर, तेंहि किये आपु समान।"

संपूर्ण भक्तिकाल में सर्वाधिक राजनैतिक चेतना रामभक्ति धारा में मानी जाती है। उसका प्रमुख कारण तुलसीदास द्वारा तत्कालीन राजनीतिक संबंधों को निष्पक्षता के साथ अभिव्यक्त करना है। तुलसीदास ने जहां एक तरफ अपने समय के राजनैतिक अराजकता और उसके शोषणकारी चरित्र का वर्णन किया है तो वहीं दूसरी ओर अपने मतानुसार राजा और प्रजा के समन्वय से ही समाज के विकास को संभव माना है। राजा को प्रजा का हर तरह से ख्याल रखना चाहिए इस भावना को प्रेषित करते हुए उन्होंने लिखा है-

"बरषत हरषत लोग सब करषत लखै न कोइ।
तुलसी प्रजा सुभाग ते भूप भानू सम होइ।।" (दोहावली)

तुलसी की भक्ति पद्धति भक्तिकाल में सर्वाधिक प्रसिद्ध है। उनकी भक्ति में जहां एक तरफ नवधा रूप को देखा जा सकता है, वहीं दूसरी ओर उनकी भक्ति पद्धति में भक्त और भगवान के समन्वय को भी समझ जा सकता है-

"तुलसी रामहुं ते अधिक रामभक्त जियजानि।
रिनिया राजा राम भे धनिक भए हनुमान।।"

तुलसी की उपरोक्त समन्वयवादी चेतना के कारण ही हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि "उनमें केवल लोक और शास्त्र का ही समन्वय नहीं है, वैराग्य और गार्हस्थ का, भक्ति और ज्ञान का, भाषा और संस्कृति का, निर्गुण और सगुण का, पुराण और काव्य का, भावावेग और अनासक्त चिंतन का, ब्राम्हण और चांडाल का, पंडित और अपंडित का। रामचरितमानस में आदि से अंत दो छोरों पर जाने वाली परा-कोटियों का मिलाने का प्रयत्न है।" [8] परंतु जैसा कि संबंधित उद्धरण से पता लगता है कि तुलसीदास ने विषय के रूप में केवल अपने समय में मौजूद विविध कथ्यों का ही समन्वय नहीं किया है बल्कि एक कालजयी रचनाकार के रूप में उन्होंने शिल्प के तत्वों का भी व्यापक स्तर पर समन्वय किया है। इसे हजारी प्रसाद द्विवेदी के ही अगले इस उद्धरण से बखूबी समझा जा सकता है- "उनकी काव्य पद्धति का अध्ययन करने से उनकी अद्भुत समन्वयात्मिका बुद्धि का परिचय मिलता है। शिक्षित जनता में जितने प्रकार की काव्य पद्धतियों का प्रचलन था, उन सबको उन्होंने सफलतापूर्वक अपनाया था। चंद के छप्पय, कुंडलियां, कबीर के दोहे और विनय

के पद, सूरदास और विद्यापति की लीला-गान विषयक भाव-प्रधान गीत-पद्धति, जायसी, ईश्वरदास आदि की दोहा चौपाईयों की शैली, गंगा आदि भाट कवियों की सवैया, कवित्त पद्धति, रहीम के बरवै- सबको उन्होंने अपनी अद्भुत ग्राहिका शक्ति के द्वारा आत्मसात कर दिया था।" [9] शायद इसी के कारण द्विवेदी जी ने तुलसी के समन्वय पर सबसे कालजयी स्थापना देते हुए यह कहने में कोई संकोच नहीं किया कि "भारतवर्ष का लोकनायक वही हो सकता है जो समन्वय करने का अपार धैर्य लेकर आया हो ....इस रूप में उनका सम्पूर्ण काव्य समन्वय की विराट चेष्टा है।" [10] शायद इसी कारण बच्चन सिंह ने भी महत्वपूर्ण स्थापना देते हुए इस बात पर जोर दिया था कि "वाल्मीकि के बाद युग के सारे अंतर्विरोधों को समेटते हुए किसी ने रामचरित को लेकर इतने महत्वपूर्ण और प्रभावशाली ग्रंथों का सृजन नहीं किया।" [11] इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि मध्यकालीन परिवेश या भक्ति-आंदोलन के समय की विसंगतिपूर्ण परिस्थितियां अपने आरंभिक रूप में तुलसीदास के यहां नहीं आई थीं, बल्कि सिद्ध, नाथ, जैन, निर्गुण और शैव, शाक्त, वैष्णव जैसी अनेक धाराओं में प्रक्षालित होकर ज्ञान, प्रेम जैसे अलग-अलग तत्वों को अपने अंदर धारण करके विकृतियों को दूर करने का प्रयास कर रही थीं। जहां एक तरफ ज्ञान अपने उपदेशात्मक प्रभाव से अज्ञानता और रूढ़ियों पर व्यंग्यात्मक प्रहार करके समाज कल्याण की एक दिशा में चल रहा था। वहीं प्रेम लोक प्रचलित कथाओं और चरित्रों का सहारा लेकर सामाजिक रूढ़ियों पर भावात्मक प्रहार करके अलग दिशा में चल रहा था। इन अलग-अलग दिशाओं में सामाजिक उपचार उतनी तीव्रता से असर नहीं दिखा पा रहा था जितना कि इन तत्वों का प्रभाव था क्योंकि जरूरत थी इन तत्वों के संयुक्त उद्यम की जिसे लोकनायक कवि तुलसीदास ने पहचाना। इसी कारण अपने समय में गोरखनाथ और रामानंद के समतुल्य उन्होंने अपने आकाश धर्मी व्यक्तित्व एवं नेतृत्व का विकास किया परंतु उनकी शैली उपरोक्त दोनों आचार्यों से विशिष्ट थी क्योंकि कुछ क्षेत्रों को अपनाने के बनिस्बत उन्होंने इसे समग्रता और सम्पूर्णता में अपनाया ताकि उनके बाद इसकी पुनः आवश्यकता पड़ने पर नए क्षेत्रों को ढूढने के बजाय उनका अनुगमन करना ही आदर्श हल बन सके। शायद इसीलिए उन्होंने अपना कोई नया सम्प्रदाय नहीं चलाया।

संदर्भ विवरण

सं. संख्या। विवरण

1. पृ. -804 - राजपाल हिंदी शब्दकोश
2. पृ. -955- संक्षिप्त हिंदी शब्दसागर
3. पृ. - 163- हिंदी साहित्य का इतिहास
4. भूमिका - लोकवादी तुलसीदास
5. पृ. -75/76 - परम्परा का मूल्यांकन
6. पृ. - 15 - गोस्वामी तुलसीदास
7. पृ. - 275 - तुलसी काव्य मीमांसा
8. पृ.- 131 - हिंदी साहित्य का उद्भव और विकास
9. पृ. - 131 वही
10. पृ. - 131 वही
11. पृ. - 139- हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास